वैदिक कालीन शिक्षा व्यवस्था – एक अध्ययन

रमेश बहादुर मौर्य

सहायक प्रवक्ता (बी०एड०)
रघुवीर महाविद्यालय, थलोई,
जौनपुर

इतिहासकारों का मानना है कि हमारे देश की सभ्यता एवं संस्कृति कम से कम 10,000 वर्ष पुरानी अवश्य है और इतना ही पुराना इसका शिक्षा का इतिहास है। यह तथ्य भी निर्विवाद रूप से प्रमाणित है कि वेद संसार के सबसे पुराने ग्रन्थ है। इनके आर्यों द्वारा उस समय तक खाजे ा, समस्त विकसित भौतिक आध्यात्मिक ज्ञान सूत्र रूप में संग्रहित है। वैदिक काल में हमारे देश ने एक समृद्धि शाली शिक्षा प्रणाली का विकास किया जिसे वैदिक शिक्षा प्रणाली के नाम से जाना जाता है।

वैदिक काल को शिक्षा की दृष्टि दो कालों में विभाजित किया गया है–प्रारम्भिक वैदिक काल और उत्तर वैदिक काल। उत्तर वैदिक कालीन शिक्षा पर ब्राह्मणीय शिक्षा प्रणाली भी कहते है। 2000 वर्ष लम्बे वैदिक काल की शिक्षा में मूलभूत समानता रही। ज्ञान के विकास के साथ–साथ इसकी पाठ्यचर्या तथा शिक्षण विधियों में भी विकास हुआ।

भारतीय शिक्षा का बीजारोपण अतीत में आज से लगभग 4000 वर्ष पूर्व हुआ था, किन्तु उसके सुसम्बद्ध स्वरूप के दर्शन वैदिक काल में दिखाई देते हैं। प्राचीन भारतीय मनीषी इस तथ्य से अवगत थे कि ''शिक्षा व्यक्ति के सर्वांगीण विकास, समाज की चतुर्मुखी उन्नति और सभ्यता की बहुमुखी प्रगति की आधारशिला है।'' एफ0 डब्लू0 टामस के शब्दों में, ''भारत में शिक्षा, के शब्दों में, ''भारत में शिक्षा, विदेशी पौधा नहीं हैं। संसार का कोई भी ऐसा देश नहीं है, जहाँ ज्ञान के प्रति प्रेम का इतने प्राचीन समय में आविर्भाव हुआ हो, या जिसने इतना चिरस्थायी और शक्तिशाली प्रभाव डाला हो।''

ऋग्वेदिक कालीन शिक्षा आजकल की भाँति सुव्यवस्थित एवं सुसंगठित न थी। 1000 ईसा पूर्व तक परिवार ही शिक्षा के प्रमुख केन्द्र बने रहे। गृह विद्यालयों में ही बालकों को साहित्य तथा व्यावसायिक शिक्षा प्रदान की जाती थी।

वैदिक साहित्य मुख्य रूप से दो भागों में विभाजित है– कर्मकाण्ड एवं ज्ञान काण्ड। कर्मकाण्ड (अर्थात् यज्ञीय कर्म) के अन्तर्गत संहिता (चतुर्वेद), ब्राह्मण और आरण्यक संकलित हैं

और ज्ञानकाण्ड में उपनिषद्। वैदिक कालीन शिक्षा व्यवस्था के अन्तर्गत निम्न बिन्दुओं पर अध्ययन किया गया है–

1 उद्देश्य
2 प्रवेश
3 शिक्षण विधि
4 पाठ्यक्रम
5 अध्यापक
6 छात्र
7 वित्तीय व्यवस्था

शिक्षा का उद्देश्य :–

वैदिक काल में जीवन दो प्रकारों में विभक्त था परा तथा अपरा। परा का अर्थ था कि ज्ञान, धर्म, कर्म तथा उपासना के द्वारा ब्रह्म अर्थात् मोक्ष की प्राप्ति करना। जबकि अपरा का अर्थ था संगठित तथा नियोजित सामाजिक व्यवस्था का संचालन करना। स्पष्ट है कि परा के लिए अलौकिक विद्याओं का ज्ञान आवश्यक था तथा अपरा के लिए लौकिक विद्याओं का ज्ञान महत्त्वपूर्ण था। परा तथा अपरा में परा को अधिक श्रेष्ठ माना जाता था। सम्भवतः इन्ही ं कारणों से वैदिक काल में शिक्षा का एकमात्र लक्ष्य छात्रों की शारीरिक, मानसिक तथा आध्यात्मिक शक्तियों का विकास इस तरह से करना था जिससे मोक्ष–प्राप्ति के सर्वोच्च लक्ष्य की प्राप्ति की जा सके। वैदिक कालीन शिक्षा के प्रमुख उद्देश्य निम्नलिखित थे।

नैतिक चरित्र का निर्माण करना :–

वैदिक कालीन शिक्षा का प्रमुख उद्देश्य छात्रों के नैतिक चरित्र का निर्माण करना था जिससे उनमें अच्छे संस्कारों का विकास हो सके। शिक्षा के द्वारा वैदिक आदर्शों के अनुरूप संस्कारों को छात्रों में विकसित किया जाता था।

पवित्रता एवं धार्मिकता का विकास करना :–

वैदिक शिक्षा का दूसरा प्रमुख उद्देश्य मानव का आत्मिक विकास करना था। उस समय मानव जीवन को धार्मिक भाव से ओत–प्रोत परन्तु अत्यधिक सरल, स्वाभाविक तथा पवित्र बनान ` का प्रयास किय गया था। जीवन का अन्तिम लक्ष्य मोक्ष की प्राप्ति थी।

व्यक्तित्व का विकास करना :–

वैदिक काल में छात्रों के सर्वांगीण विकास पर बल दिया जाता था। यही कारण है कि इस समय शिक्षा का एक उद्देश्य छात्रों के व्यक्तित्व का विकास करना भी था। शिक्षा के द्वारा छात्रों में आत्मविश्वास, सामाजिकता, नेतृत्व, आत्मसम्मान, सहनशीलता, परोपकार आदि गुणों का विकास किया जाता था।

सामाजिक कुशलता की उन्नति :–

वैदिक युग में छात्रों में सामाजिक जीवन की भावना विकसित करके उन्हें स्वस्थ नागरिक बनाना भी शिक्षा का एक उद्देश्य था। छात्रों को अपनी शिक्षा पूर्ण करके ब्रह्मचर्य आश्रम के कर्त्तव्यों का ज्ञान कराया जाता था। जिससे वे अपने पारिवारिक व सामाजिक उत्तरदायित्वों को समझ सकें तथा समाज व राष्ट्र के उत्थान में सक्रिय रूप में भाग ले सकें।

संस्कृति का संरक्षण एवं प्रसार करना :–

शिक्षा का एक प्रमुख उद्देश्य सदैव से सांस्कृतिक धरोहर को अक्षुण्ण रखना रहा है। वैदिक शिक्षा भी राष्ट्रीय व सामाजिक संस्कृति का संरक्षण करती थी। छात्रों को संस्कृति का ज्ञान प्रदान करके सांस्कृतिक विरासत को एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी तक हस्तान्तरित किया जाता था।

जीविकोपार्जन के लिए तैयार करना :–

वैदिक शिक्षा में छात्रों को इस तरह का व्यवहारिक ज्ञान प्रदान किया जाता था कि वे अपने भावी जीवन को सुचारू रूप से चलने में समर्थ हो सकें। अतः स्पष्ट है कि वैदिक शिक्षा का उद्देश्य मनुष्य का सर्वांगीण विकास करके उसे पूर्ण मानव बनाना था।

प्रवेश :–

वैदिक काल में बालक की प्रारम्भिक शिक्षा अपने परिवार में ही विद्यारम्भ संस्कार के उपरान्त ही आरम्भ हो जाती थी। यह संस्कार 5 वर्ष की अवस्था में होता था जिसके उपरान्त बालक को शिक्षा क्षत्रे में पदार्पण कराया जाता था। प्रारम्भिक शिक्षा के अन्तर्गत बालकों को लिखना, पढ़ना तथा गणना का ज्ञान कराया जाता था। प्रारम्भिक शिक्षा सामान्य रूप से गृहों में ही प्रदान की जाती थी। लेकिन शिक्षा का विधिवत प्रारम्भ बालक के उपनयन संस्कार के बाद ही होता था। वैदिक कालीन शिक्षा में विद्यार्थी को 'ब्रह्मचारी' की संज्ञा प्रदान की जाती थी। विद्यार्थी जीवन 'उपनयन' संस्कार के बाद आरम्भ होता था।

'उपनयन' शब्द का अर्थ है, 'गुरु के पास ले जाना' (Taking near to the Teacher) या शिक्षा का प्रारम्भ (Initiation into knowledge) उपनयन के पश्चात् ही विद्यार्थी 'ब्रह्मचारी' कहलाता था। गुरुकुलों में प्रवेश पाने के पूर्व ही 'उपनयन' का सम्पन्न होना आवश्यक माना जाता था। उपनयन संस्कार प्रथम तीन वर्णों के लिए आवश्यक था। डा0 पी0एन0 प्रभु के शब्दों में 'हिन्दू परिवार में ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य वर्ण से सम्बन्धित प्रत्येक बालक कुछ धार्मिक क्रियाओं एवं संस्कारों के द्वारा शिक्षा के क्षेत्र में प्रवेश करता था, जिन्हें उपनयन संस्कार के अन्तर्गत रखा जाता है। इस संस्कार के द्वारा ही बालक भौतिक शरीर के स्थान पर आध्यात्मिक शरीर प्राप्त करता था। एक प्रकार से बालक का दूसरा जन्म होता था। अब वह द्विज अथवा ब्रह्मचारी

कहलाने लगता था।' प्रत्येक वर्ण के लिए विद्यारम्भ की विभिन्न आयु निर्धारित की गई। यह ब्राह्मण के लिए 8 वर्ष, क्षत्रिय के लिए 11 वर्ष और वैश्य के लिए 12 वर्ष निश्चित की गयी थी। मनुस्मृति में उपनयन संस्कार न करने वालों को व्रात्य कहा गया है। इस प्रकार वैदिक काल में सम्पूर्ण भारतीय समाज को साक्षर बनाने का प्रयास किया गया था।

ब्रह्मचर्य आश्रम तथा शिक्षा काल का अन्त समावर्तन संस्कार से होता था। समावर्तन का अर्थ है वापस जाना। जब गुरु (आचार्य) के घर से शिक्षालेकर विद्यार्थी अपने घर लौटता था उस अवसर पर यह संस्कार

होता था।

शिक्षण विधि :–

वैदिक कालीन छात्रों को ज्ञान प्रत्यक्ष रूप से प्रदान किया जाता था। शिक्षक का प्रमुख स्थान था। शिक्षा संस्कृत भाषा में दी जाती थी। शिक्षक वैदिक मंत्रों का गायन करता था, उसकी व्याख्या करता था, तथा अपना मत व्यक्त करता था। उसका मुख्य उद्देश्य छात्रों के द्वारा वैदिक मन्त्रों का सही ढंग से उच्चारण करना तथा उसके अर्थ को समझना होता था। शिक्षण हेतु प्रश्नोत्तर, कथा, व्याख्यान, वाद–विवाद आदि विधियों का प्रयोग किया जाता था।

वैदिक काल में ज्ञान प्राप्त करने की मुख्यतः दो विधियाँ तप तथाश्रुति प्रचलित थीं। तप विधि में छात्र स्वयं मनन, चिन्तन तथा आत्मानुभूति करके ज्ञान प्राप्त करता था। इसके विपरीत श्रुति में छात्र दूसरों से सुनकर ज्ञान प्राप्त करता था। कहीं–कहीं श्रवण, मनन तथा निदिध्यासन नामक तीन अध्ययन विधियों की भी चर्चा मिलती हैं वैदिक काल में शिक्षा का सर्वोच्च रूप शास्त्रार्थ समूहों तथा सभाओं में दृष्टिगोचर होता था जहाँ छात्र एवं गुरुजन एकत्रित होते थे तथा अपने–अपने ज्ञान का प्रदर्शन करते थे, विचार–विमर्श करते थे तथा शास्त्रार्थ करते थे।

पाठ्यक्रम :–

वैदिक पाठ्यक्रम धार्मिक तथा साहित्यिक पुस्तकों से परिपूर्ण था। वैदिक शिक्षा के उद्देश्यों से यह स्पष्ट हो जाता है कि उस समय लोग आध्यात्मिक तथा लौकिक दोनों प्रकार की उन्नति करना चाहते थे। इसलिए पाठ्यक्रम में दोनों प्रकार के विषयों का समावेश किया गया था। कठोप निषद् में दो प्रकार की विद्याओं का उल्लेख मिलता है।

परा या अध्यात्मिक विद्या :–

इसके अन्तर्गत चारों वेद, वेदांग, उपनिषद्, पुराण, दर्शन तथा नीतिशास्त्र आते थे।

अपरा अथवा लौकिक विद्या :–

इसके अन्तर्गत इतिहास, औषधिशास्त्र, अर्थशास्त्र, ज्योतिष, ज्यामिति, तर्कशास्त्र, व्याकरण, धनुर्विद्या, शल्यविद्या, भौतिकशास्त्र, भौतिकशास्त्र, रसायनशास्त्र, प्राणिशास्त्र, आदि आते थे।

उपर्युक्त सभी विषय सभी छात्रों के लिए अनिवार्य नहीं थे। धार्मिक साहित्य तथा इन विषयों में कुछ सामान्य अध्ययन के उपरान्त विद्यार्थी किसी विशेष विषय में योग्यता प्रदान करता था। प्रारम्भ में विद्या वर्णानुकूल नहीं थी किन्तु उत्तर वैदिक काल में वर्ण व्यवस्था में जटिलता आने के कारण वर्णों के अनुसार शिक्षा दी जाने लगी। अतः प्रत्येक वर्ण के लिए अध्ययन के विषय निश्चित कर दिए गए जैसे– ब्रह्मणों के लिए धार्मिक ग्रन्थों का अध्ययन तथा धार्मिक कृत्यों से सम्बन्धित ज्ञान प्राप्त करना अनिवार्य बना दिया गया। क्षत्रियों के लिए प्रशासन तथा सैनिक शिक्षा और वैश्यों के लिए कृषि, व्यापार, हस्तकला आदि विषयों को महत्त्व दिया गया।

इस प्रकार हम वैदिक कालीन पाठ्यक्रम को दो भागों, प्राथमिक शिक्षा और उच्च शिक्षा के पाठ्यक्रम में रख सकते हैं। प्राथमिक शिक्षा के अन्तर्गत बालकों को पहले कुछ वैदिक मन्त्रों का उच्चारण करना और बोलना सिखाया जाता था। तत्पश्चात् उन्हें पढ़ने और लिखने की शिक्षा दी जाती थी। शिक्षा के पाठ्यक्रम में वैदिक मंत्रों का स्मरण, पढ़ना और लिखना, भाषा, साहित्य एवं व्याकरण था।

उच्च शिक्षा के पाठ्यक्रम में पराविद्या और अपराविद्या दोनों को स्थान दिया गया था। इस प्रकार उच्च शिक्षा के पाठ्यक्रम में वेद, वेदांग, पुराण, दर्शन, उपनिषद्, इतिहास, तर्कशास्त्र, भूगर्भशास्त्र, भौतिकशास्त्र, रसायनशास्त्र, प्राणिशास्त्र तथा नीतिशास्त्र आदि विषयों को सम्मिलित किया गया था। इस युग में व्यवसाय और उद्योग के लिए लाभदायक शिल्पों की भी शिक्षा दी जाती थी। 'तक्षशिला' में विद्यार्थियों को वेदों के साथ ही साथ अट्ठारह शिल्पों की भी शिक्षा दी जाती थी। कालान्तर में पूर्व समय की अपेक्षा वैदिक साहित्य का अध्ययन कम हो गया। विदेशी पर्यटकों के विवरण में 4 वेदों, 6 वेदांगों, 14 विद्याओं, 18 शिल्पों तथा 64 कलाओं का उल्लखे मिलता हैं

अध्यापक :–

वैदिक शिक्षा में गुरु का पर्याप्त महत्त्व था। गुरु के अभाव में आध्यात्मिक ज्ञान के गढ़ू तत्त्वों को समझना असंभव है, अतः इसके लिए विद्वान् गुरु परम् आवश्यक है। जो व्यक्ति गुरु चरणों की शरण नहीं लेता और स्वयं ज्ञान प्राप्त करने की चेष्टा करता है, वह अन्धा है। इस प्रकार प्राचीन साहित्य में गुरु की अत्यधिक महिमा बतलाई गई है और उसे ब्रह्म स्वरूप कहा गया है। वही व्यक्ति गुरु बनने योग्य माना गया जो ब्रह्मज्ञान प्राप्त कर चुका है।

वैदिक युग में तीन प्रकार के शिक्षक होते थे– गुरु, आचार्य तथा उपाध्याय। गुरु, उसे कहते थे जो समस्त संस्कारों को पूर्ण कर वेदों का निर्देशन देता था। मनु के कथनानुसार आचार्य वह था जो अपने शिष्यों को वेद का ज्ञान, कल्प सूत्र तथा उपनिषद् के संग निःशुल्क देता था। उपाध्याय वह शिक्षक कहलात` थे जो अध्यापन के व्यवसाय को जीवन–यापन के

निमित्त ग्रहण करते थे तथा वे वेद के एक भाग का अध्ययन कराते थे। वैदिक कालीन शिक्षकों में निम्नलिखित योग्यताओं तथा गुणों का होना आवश्यक था :–

1. विद्यार्थी शिक्षक को एक आदर्श चरित्रवान व्यक्ति के रूप में देखते थे। अतः उन्हें चरित्रवान तथा ज्ञानी होना आवश्यक था।
2. उसे धैर्यवान होना चाहिए तथा छात्रों के साथ उसका व्यवहार निष्पक्षता का होना चाहिए।
3. उसे अपने विषय का पूर्ण ज्ञाता होना चाहिए। उसे जीवन पर्यनत अध्ययन करना चाहिए। इसके साथ उसमें अद्‌भतू वाक्–शक्ति होना चाहिए। इसके साथ उसे प्रत्युत्पन्न मति तथा मनोविनोदी भी होना चाहिए और अध्यापन कला में भी निपुण होना आवश्यक था।
4. अपने ज्ञान तथा चरित्र से उसे छात्रों पर अमिट छाप छोड़नी चाहिए।
5. उसे छात्रों को प्रोत्साहित तथा निर्देशित करना चाहिए।

छात्र :–

वैदिक कालीन शिक्षा व्यवस्था में विद्यार्थी को 'ब्रह्मचारी' की संज्ञा प्रदान की जाती थी। विद्यार्थी जीवन 'उपनयन' संस्कार के बाद आरम्भ हाते ा था। 'उपनयन' संस्कार के पश्चात् ही कोई विद्यार्थी गुरुकुल में प्रवेश ले सकता था। जब वह गुरुकुल में अपने गुरु के संरक्षण में रहना शुरू कर देता था, तब उसे 'अन्तेवासिन' या 'गुरुवासी' कहा जाता था।

गुरुकुल में प्रत्येक विद्यार्थी को सादा तथा शुद्ध जीवन व्यतीत करना पड़ता है। उनको संसार की समस्त आकर्षक वस्तुओं से दूर रहकर कठोर जीवन व्यतीत करने का विद्याभ्यास करना पड़ता था। विद्यार्थी गुरु के ही संरक्षण में रहते थे। गुरु शिष्यों से किसी प्रकार का शुल्क स्वीकार नहीं करता था। विद्यार्थियों को ब्रह्ममुहुर्त में शैय्या त्याग देनी पड़ती थी। दैनिक क्रिया से निवृत्त होकर स्नान के उपरान्त पूजन आदि करना पड़ता था। तदुपरान्त अपने नए पाठ को याद करना पड़ता था अथवा पुराने पाठ की पुनरावृत्ति करनी पड़ती थी। दोपहर का भोजन लगभग 11 बजे होता था। इसके पश्चात् वह भिक्षा के लिए निकटस्थ ग्राम या नगर में जाना पड़ता था। प्राप्त भिक्षाटन्न से वह स्वयं भोजन बनाता था अथवा उसे गृह पत्नी को देता था और उसके द्वारा पकाए गये भोजन को ग्रहण करता था। दापे हर को लगभग 1 घण्टे का विश्राम के बाद दो बजे फिर अध्ययन प्रारम्भ होता था। सायंकाल का समय शारीरिक व्यायाम में व्यतीत हाते ा था। सूर्यास्त के समय वे संध्या तथा पूजन करते थे और रात्रि का भोजन ग्रहण करते थे। छात्रों के अपने गुरुओं के प्रति निम्नलिखित कर्त्तव्य थे जिनका पालन उनको करना पड़ता था –

1. गुरुओं का, पिता, राजा तथा ईश्वर के समान आदर करना।

2. छात्रों का वाह्य व्यवहार भी गुरुओं के प्रति सम्मानजनक होना चाहिए। उचित ढंग का अभिवादन, उनके समक्ष उच्च आसन नहीं ग्रहण करना चाहिए। उन्हें आकर्षक वस्त्र भी गुरु के सामने नहीं धारण करना चाहिए।

3. उनके लिए परनिन्दा निषेध था।

4. गुरु की आज्ञा का पालन करना। गुरु गृह की अग्नि को प्रज्जवलित रखना।

5. गुरु की गायों को चराना, ईधन इकट्ठा करना, बर्तन साफ करना, गुरु गृह की सफाई करना।

6. सादा जीवन व्यतीत करना, विद्याध्ययन करना, संयमित जीवन को अपनाना तथा साधारण एवं उत्तेजनारहित भोजन करना।

7. ब्रह्मचर्य व्रत का पालन करना।

8. भिक्षा माँगना प्रत्येक छात्र का धार्मिक कर्त्तव्य था।

वित्तीय व्यवस्था :–

इस समय शिक्षा निःशुल्क थी। शिक्षा दान, धार्मिक कर्त्तव्य था जिसके द्वारा गुरु ऋषि–ऋण से मुक्ति पाता था। शिक्षा का उद्देश्य जीविकोपार्जन नहीं था वरन् ज्ञान का प्रसारण था। प्रत्येक गुरु अपने ज्ञान का हस्तान्तरण अपने शिष्य को करता था और इस प्रकार वह वेद ज्ञान को अक्षुण्ण बनाये रखना अपना परम धर्म समझता था। यदि वह इस ज्ञान को अपने तक सीमित रखता तो उसके जीवन के साथ–साथ ज्ञान का दीपक भी सदैव के लिए बुझ जाता। अतः इसका ध्येय ज्ञान की अक्षयनिधि को इसी प्रकार बनाये रखना था। गुरुकुलों की आर्थिक आवश्यकताओं की पूर्ति समाज करता था। शिष्य शिक्षा प्राप्त करने के उपरान्त गुरु दक्षिणा देते थे, कभी–कभी समाज के धनी और दानी व्यक्ति गुरुकुलों की आर्थिक आवश्यकताएँ परी करते थे, कभी–कभी राज्य द्वारा भी गुरुकुलों को सहायता प्राप्त होती थी। इस प्रकार आर्थिक आवश्यकताओं की पूर्ति के तीन साधन थे–

1. गुरु दक्षिणा के रूप में प्राप्त धन।
2. समाज के धनिक वर्ग से प्राप्त धन।
3. राज्य कोष से प्राप्त धन।

गुरुकुल अपनी नीति निर्धारण में पूर्णरूपेण स्वतंत्र थे। राज्य की ओर से उनके ऊपर किसी प्रकार का प्रतिबन्ध नहीं था, राज्य गुरुकुल की किसी नीति में हस्तक्षेप नहीं करता था।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

- अग्रवाल, अल्पना (1987). जैन ज्ञान–मीमासां एवं समकालीन विचार, पी0एच–डी0 शोध, इलाहाबादः इलाहाबाद विश्वविद्यालय।

- ओड, डॉ0 लक्ष्मीकान्त (1973), शिक्षा की दार्शनिक पृष्ठभूमि, जयपुरः राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी।
- एस0 एविनेरी, (1968), द सोशल एण्ड पॉलीटकल थॉट्स ऑफ कार्ल मार्क्स, कैम्ब्रिजः कैम्ब्रिज यूनिवर्सिटी प्रेस।
- कश्यप व धर्म रक्षित (1950), संयुक्त निकाय, पटनाः भारतीय पब्लिशर्स।
- किशोर, दवे राजनन्द (1999), भारतीय दर्शन, लखनऊ : (उ0प्र0) हिन्दी संस्थान।
- चटर्जी एवं दत्त (1989), भारतीय दर्शन, पटनाः पी0वी0 प्रकाशन।